वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

वेद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः ५ रुपये अप्रैल २०१४

कुल पृष्ठ संख्या 20, वजनः 40 ग्राम

अन्तःपथ

पूज्य उपाध्याय जी का महर्षि दयानन्द दर्शन *(प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु')*	३ से ९
संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य चर्चा एवं समाधान *(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)*	१० से १३
वैदिक भाषा सरल एवं सर्वोत्कृष्ठ है *(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)*	१३ से १८

मनुष्य कितना मूर्ख है प्रार्थना करते समय समझता है कि भगवान सब सुन रहा है, पर निन्दा करते हुए ये भूल जाता है।

पुण्य करते समय यह समझता है कि भगवान देख रहा हैं, पर पाप करते समय से भूल जाता है।

दान करते हुए यह समझता है कि भगवान सब में बसता है, पर चोरी करते हुए ये भूल जाता है।

प्रेम करते हुए यह समझता है कि पूरी दुनिया भगवान ने बनाई है। पर नफरत करते हुए ये भूल जाता है.....और हम कहते हैं कि मनुष्य सबसे बुद्धिमान प्राणी है।

विभु-विनय

जब जब तिमिरमयी भव रजनी
जीवन में उतरे,
आकर मेरे हृदय अजिर में
ताँडव नृत्य करे,
ले निज सकल कलाओं को विभु
उर में तब उतरो,
धोकर कल्मिष ज्योत्स्ना से सब
आभा अमल भरो,
पावन शीतल सुखद करों में
मेरा मन बिचरे,
उठे ज्वार-भाटे इस उर में
तव छवि देख हरे।
दुर्दिन में प्रतिध्वनि प्रभु। तेरी
मेरा शून्य भरे,
और उसी लय में लय होकर
यह भवसिंधु तरे।

महाकवि डॉ० विद्या भूषण जी 'विभु' रचित यह अलभ्य प्रार्थना गीत श्री राहुल जी, अकोला की कृपा से प्राप्त हुआ।

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६३ अंक ९ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, अप्रैल, २०१४

सम्पा० **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व० **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

पूज्य उपाध्याय जी का महर्षि दयानन्द दर्शन

–राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन, अबोहर–152116

आर्य समाज के पुराने पूजनीय विद्वानों, शास्त्रार्थ महारथियों, कर्मठ भजनोपदेशकों तथा पुराने प्रकाशकों ने वैदिक धर्म प्रचार, जाति रक्षा तथा अंधकार निवारण के ऐसे-ऐसे कार्य किये हैं कि जिनका आज मूल्याङ्कन समाज में नहीं हो रहा। जो कार्य आज असम्भव दीखते हैं वे अति कठिन कार्य हमारे तपस्वी समर्पित पूर्वजों ने कर दिखाये। ऐसा ही एक कार्य पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय रचित ग्रन्थ रत्न Philosophy of Dayananda है। यह ग्रन्थ तो निराला है ही, इसकी लेखन शैली भी निराली थी। इससे पहले इस विषय पर केवल एक ही ग्रन्थ छपा। उसके लेखक उपाध्याय जी के सपूत श्री डॉ० सत्यप्रकाश जी थे। इन दोनों ग्रन्थों में से अधिक श्रेष्ठ कौन सा है? इसका निर्णय करना उतना ही कठिन कार्य है जितना कि ऐसा ग्रन्थ लिखना है तथापि इस सम्बन्ध में एक प्रेरक प्रसंग देकर हम विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द के नवीन साहसिक Project (परियोजना) उपाध्यायकृत Philosophy of Dayananda के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन पर कुछ लिखेंगे।

इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के छपने के थोड़ा समय पश्चात् पूज्य उपाध्याय जी से प्रो० रत्नसिंह की भेंट हुई तो पण्डित जी ने उनसे पूछ लिया, "क्या मेरा ग्रन्थ पढ़ा है?"

प्रो० रत्नसिंह ने हाँ में उत्तर दिया तो आपने कहा, "क्या सत्यप्रकाश का भी पढ़ रखा है।" रत्नसिंह जी ने कहा, "हाँ! पिताजी वह भी पढ़ रखा है।"

आगे प्रश्न किया कि दोनों में से कौन सा अधिक अच्छा लगा?

रत्नसिंह जी ने कहा, "पिताजी! मेरे विचार में तो सत्यप्रकाश जी का ग्रन्थ आपके ग्रन्थ से अधिक अच्छा है।"

इस पर श्रद्धेय उपाध्याय जी ने कहा, "मेरा भी यही मत है। मैंने अपना ग्रन्थ लिखते समय उसे इस कारण से नहीं देखा था ताकि उस के प्रभाव से मेरा चिन्तन मुक्त रहे।"

यह तो उपाध्याय जी का बड़प्पन था कि अपने ग्रन्थ को पुत्र के ग्रन्थ से बढ़िया नहीं माना। उसे उसी समय पढ़ा था जब वह छपा था। इन पंक्तियों का लेखक दोनों की लेखनी का दीवाना रहा है। हमारे लिये तो यह एक समस्या है कि इन दोनों ग्रन्थों में से किसे अधिक बढ़िया बतावें? दोनों ग्रन्थ अपने-अपने ढंग से बेजोड़ हैं। दोनों की एक-एक पंक्ति पठनीय तथा पचाने Digest करने योग्य है। इन दोनों के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन का गौरव श्री अजय आर्य को प्राप्त है। दोनों के अनुवादक सिद्धहस्त साहित्यकार और सुयोग्य विद्वान् डॉ० रूपचन्द्र जी दीपक लखनऊ हैं।

मेरे प्रबल अनुरोध पर आपने यह कठिन कार्य हाथ में लेकर कर दिखाया है। पंजाब में एक लोकोक्ति है **'बेड़ी संग लोहा वी तर जांदा ए'** अर्थात् नौका के साथ लोहा भी नदी पार हो जाता है। यह कार्य सिरे चढ़ा कर दीपक जी और अजय जी भी उपाध्याय जी के समान अमर रहेंगे। इन पंक्तियों के लेखक की आत्मा तृप्त हो गयी जो मान्य दीपक जी को यह सत्य प्रेरणा देने में सफल रहा।

आर्यसमाज ने महर्षि दर्शन का प्रचार सन् 1947 के पश्चात् छोड़ ही दिया। महर्षि दयानन्द जी को केवल एक सुधारक के रूप में संसार के सामने रखा। इसी का दुष्परिणाम यह निकला है कि मायावाद, स्वप्नवाद, जगत्-मिथ्या, जड़पूजा और जातिवाद, मनुष्य पूजा, कबर पूजा सब अंध विश्वास पनप रहे हैं। धार्मिक जगत् में अद्वैतवादी होना एक वैचारिक फैशन और बड़प्पन माना जाता है। स्वामी सत्यप्रकाश जी ने अपने दयानन्द दर्शन में लिखा है कि यदि एक ही सत्ता (ब्रह्म) के और जो कुछ लिखा है ठीक ही लिखा है।

अभी तक स्वामी सत्यप्रकाश जी के अंग्रेजी ग्रन्थ के तीन संस्करण छपे हैं। हिन्दी में प्रथम संस्करण समाप्त होने वाला है। उपाध्याय जी का ग्रन्थ हिन्दी में पहली बार आ रहा है। अंग्रेजी संस्करण दो बार छप चुका है। आर्यसमाज को पूरे दल बल से इन दोनों के हिन्दी संस्करण को घर-घर पहुँचाना चाहिये। विश्वविद्यालयों में यह ग्रन्थ पहुँचाने का एक जोरदार आन्दोलन छेड़ना चाहिये। उपाध्याय जी ने अपने ग्रन्थ का पहला संस्करण

छपते ही इसे संसार के बड़े-बड़े विश्व विद्यालयों में बड़े-बड़े दार्शनिकों तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की। इस पर प्रतिक्रिया भी बहुत प्राप्त हुई।

महर्षि के दार्शनिक दृष्टिकोण की अवैदिक दृष्टिकोण से तुलना करके आर्य दृष्टिकोण की श्रेष्ठता विशेषता बताने की आपकी शैली व सोच ही निराली थी। विकासवाद के नाम पर Law of Natural Selection की भौतिकवादी व नास्तिक बहुत दुहाई देते थे। उपाध्याय जी ने नैसर्गिक चुनाव पर विचार करते हुए लिखा कि चुनाव का अर्थ है कि चुनाव करने की स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्रता किस को है? जड़ की तो हो नहीं सकती। जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को डार्विन मतवादियों तथा उनसे प्रभावित सब मत पन्थों को नैसर्गिक निर्वाचन का नाम देकर परोक्ष रूप में मान्यता दे दी है।

स्वप्नवाद मायावाद की हमने ऊपर कुछ चर्चा छेड़ी थी। उपाध्याय जी की मौलिक व्याख्या हृदय-स्पर्शी है। ईश्वर को धन्यवाद दो कि यह वाद दार्शनिक बातें बनाने वालों तक ही सीमित रही। कृषकों ने, सैनिकों ने और श्रमिकों ने जगत को न तो मिथ्या माना और न ही स्वप्न माना। वे निरन्तर खेती को, कल कारखानों को, जगत को, जलवायु को ऋतुओं को सत्य मान कर अपना कार्य निरन्तर किये जा रहे हैं।

अपने ग्रन्थ के आरम्भ में सत्यार्थप्रकाश की भूमिका से ऋषि के शब्द उद्धृत करके पाप, पुण्य की पहेली का दार्शनिक विवेचन आपने किया है। मनुष्य अपने हठ, दुराग्रह, प्रयोजन की सिद्धि तथा अविद्यादि दोषों से असत्य में झुक जाता है।

मानने से कोई बड़ा कहता है तो **फिर शून्यवादी उससे भी बड़ा है जो एक की भी सत्ता नहीं मानता।** आप ने यह भी लिखा है कि **माया जिसकी व्याख्या ही नहीं हो सकती** के बिना शंकराचार्य अपने मिथ्या जगत की पहेली नहीं सुलझा सकते।

पं० गंगाप्रसाद जी ने भी अपने अनूठे चिन्तन से अद्वैतवाद का प्रतिवाद तथा त्रैतवाद का मण्डन करते हुए एक सर्वथा मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करते हुए लिखा है, "What do these words omniscience, omnipresence and omni-potence mean? Instead of saying all knower, all-present and all-powerful, you should say nothing-knower, nothing pervader and possessor of no-power." अर्थात् आपका

ईश्वर का सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा सवर्शक्तिमान, कहाने से क्या अभिप्राय है? यदि केवल ब्रह्म की ही एक सत्ता है तो फिर यह कहिये कि वह ब्रह्म किसी को नहीं जानता, किसी में व्यापक नहीं और उसमें कोई शक्ति नहीं। यह चिन्तन ऋषि दयानन्द के दिव्य दर्शन का ही फल है। किसी नये पुराने ग्रन्थ में यह तर्क आप नहीं पायेंगे।

आज भी पूरे विश्व में ईश्वर के नामलेवा मत पंथों के सामने यह उलझाने वाला प्रश्न है कि परमात्मा ने पाप को क्यों बनाया? परमात्मा ने पापी को क्यों पैदा किया है। उपाध्याय जी का तर्क है कि परमात्मा ने न तो पाप को उत्पन्न किया है और न ही पापी को बनाया है। किसी वस्तु का दुरुपयोग अथवा अनुपयोग ही पाप है। अनादि जीव किसी कर्म के करने, न करने तथा उलट करने में स्वतन्त्र है। वैदिक दर्शन की सरल सबोध व्याख्या करने में उपाध्याय जी को अखुत सिद्धि व प्रसिद्धि प्राप्त रही है। रूस में साम्यवादी युग में किसी साम्यवादी लेखक ने ऋषि दयानन्द जी पर कुछ लिखा ही नहीं। पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के दर्शन ग्रन्थों को पढ़कर पहली बार ऋषि पर कुछ लिखा है। आर्यसमाजी विचारकों में पं० रामचन्द्र जी देहलवी तथा उपाध्याय जी ने सत्यार्थप्रकाश के इन शब्दों के महत्त्व व मौलिकता को संसार के सामने लाने का सर्वाधिक उद्योग किया। शैतान अथवा कोई अन्य सत्ता पाप नहीं करवाती। पाप तो निर्बलता अल्पज्ञता आदि दोषों के कारण मनुष्य करता है। विश्व के किसी भी न्यायालय में किसी भी मत के मानने वाले ने दण्डित होने पर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिये कभी नहीं कहा कि मैं दोषी नहीं हूँ। शैतान ने यह पाप करवाया है।

कुछ लोग यह रट लगाते हैं कि परमात्मा की आज्ञा के बिना पत्ता तक नहीं हिल सकता। विभिन्न मतवादी विचारकों ने कभी गम्भीरता से इस कथन का नोटिस Notice ही नहीं लिया। उपाध्याय जी ने एक ही वाक्य लिखकर रेत की खड़ी इस दीवार को भूमि पर बिछा दिया, "पत्ता हिले न हिले परन्तु झूठे की वाणी तो अवश्य चलती न हिलती है।" विचारकों तक पूज्य उपाध्याय जी की यह सोच पहुँची और गले के नीचे उतर गई। विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार तथा विचारक श्री अनवर शेख के ग्रन्थ **'फ़िक्रे इकबाल'** में श्रीमान् अनवर शेख जी ने उपाध्याय जी का नाम लिये बिना इस युक्ति का प्रयोग किया। अनवर शेख इस्लाम तथा ईसाई मत के मर्मज्ञ

थे। दोनों मत जीव तथा प्रकृति की उत्पत्ति ईश्वर से हुई मानते हैं। अनवर शेख जी ने **'फ़िक्रे इकबाल'** के पृष्ठ 37 पर स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि ईश्वर ने इन्हें उत्पन्न नहीं किया वह प्रभु इनका नियन्ता है, व्यवस्थापक है।

वर्ण व्यवस्था पर विचार करते हुए पश्चिमी विचारकों की colour theory (रंग पर आधारित) पर बहुत सटीक टिप्पणी करते हुए उपाध्याय जी ने अपने ग्रन्थ में लिखा है, "The colour theory of the Hindu caste system is a surmise of colour-diseased European mentality. The Hindus have no four colours corresponding to four castes.". रंगों के आधार पर हिन्दुओं की जाति व्यवस्था का मत पश्चिमी विचारकों की रंग रोग से ग्रसित मानसिकता की उपज हैं। इन चार जातियों के अनुरूप चार रंग हिन्दुओं में कहीं नहीं।

पितृ यज्ञ पर लिखते हुए आपने इसके लिए ancestor worship (पूर्वजों का सम्मान) शब्द का प्रयोग किया है। लोग Idol worship, Hero worship शब्दों का बहुत प्रयोग करते हैं। आपने अपने ग्रन्थ में पंच महायज्ञों पर लिखते हुए इस शब्द का प्रयोग करके यज्ञों की महिमा व मर्म पर अनूठी शैली में लिखा है। यह भी लिखा है कि ये गृहस्थों के अनिवार्य कर्त्तव्य हैं। इनमें विकल्प का कोई प्रश्न ही नहीं।

देवयज्ञ के लिये लिखा है, "This is to keep the air always pure and free from disease-creating germs.". अर्थात् अग्निहोत्र वायु को सदा रोग पैदा करने वाले कीटाणुओं से शुद्ध रखने के लिये किया जाता है। फिर लिखा है, "It expresses the desire to free mankind from the attacks of disease creating germs." अर्थात् हवन यज्ञ तो रागों को पैदा करने वाले रोगाणुओं के आक्रमणों से मनुष्य जाति को बचाने की इच्छा की अभिव्यक्ति है।

उपाध्याय जी ने एक आत्मा का दूसरे से सम्बन्ध हमारे भीतर के स्वभाव व स्वरूप (Nature) पर आधारित है। यह सम्बन्ध भौतिक या शारीरिक नहीं है। आर्य विचारधारा के प्रबल प्रचार से ही Racial Distinction नस्ल भेद जा सकता है। भाषण देने से नहीं। कारण विश्व के लोग कल्पित Races नस्लों को अब भी मानते हैं।

आपने बलपूर्वक आर्य साहित्य में यह चिन्तन दिया है, "That who is not all-pervading cannot be a almighty, creator, sustainer, dissolver of the world." अर्थात् जो सर्वव्यापक नहीं है वह सर्वशक्तिमान्,

रचयिता, पालनकर्ता तथा संसार का संहारक भी नहीं हो सकता। आपने कहीं पर ऐसा भी लिखा है कि परमात्मा सर्वव्यापक है इसी से सिद्ध हो जाता है कि वह सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान भी है। सर्वव्यापक होने से सब कुछ उसके पास है और कण-कण में हर मन में हर तन में व्यापक होने से सब कुछ जानता है।

आपने यह भी लिखा है कि हम ईश्वर के सब गुण अपने में पैदा कर सकते हैं यथा वह दयालु है। वह प्रभु न्यायकारी है। हम भी न्याय प्रिय व दयावान् हो सकते हैं परन्तु मनुष्य में कभी भी ईश्वर के तीन गुण नहीं आ सकते। मनुष्य सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान कभी भी नहीं बन सकता।

आपने जो कुछ भी लिखा है बहुत सुन्दर लिखा है। आप पढ़-पढ़कर दार्शनिक नहीं बने। आप अपने जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों व स्वभाव से ही दार्शनिक थे। देखिये राज धर्म पर कैसा मार्मिक वाक्य लिखा है। ऋषि के अनुसार "Whatever form of government, our governors must be learned, virtuous and cultured." अर्थात् शासन की पद्धति कुछ भी हो सकती है परन्तु हमारे शासक सुशिक्षित, धर्मात्मा (श्रेष्ठ आचरण वाले) तथा सुसंस्कृत अवश्य होने चाहिये।।

एक स्थान पर भारतीय इतिहास का निचोड़ ऐसे दिया है, "The ancient aryas did not rise without cause and the present Hindus did not fall without cause. The difference lay in their character." प्राचीन आर्यों का उत्थान अकारण नहीं था और वर्तमान में हिन्दुओं का पतन भी अकारण नहीं। भेद दोनों के आचरण में है।

बहुत सूक्ष्म बात को अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त करने समझाने की आप में एक कला थी। अभाव से भाव की बातें करने वालों को कहा करते थे-जादूगार बिना ऋतु के बिना पेड़ के आपको सेब व आम आदि उपलब्ध करवा सकता व दिखा सकता है परन्तु परिवार का पेट पालने के लिए आप से ही पैसा-पैसा माँगता है। अभाव से भाव की मान्यता का बोझा दर्शन शास्त्र नहीं उठा सकता। कहीं ऐसा भी लिखा है कि चारपाई पर लेटे-लेटे शांकर मत का कोई आचार्य सो जावे और उसकी खाट का पैर (पावा) टूट जावे फिर उससे पूछिये खाट है अथवा मिथ्या है। कैसा अनूठा कथन है।

अवतारवाद पर लिखते हुए लिखा है कि किसी भी वस्तु में परिवर्तन होने पर वह पहिले से बढ़िया अथवा घटिया हो जावेगी। परमात्मा अवतार

धारण करके पहिले से उन्नत हो जाता है अथवा अवनत? कोई सी भी स्थिति हो यह मानना पड़ेगा कि वह पूर्ण (Perfect) अखण्ड और परमानन्द नहीं था। पूर्ण परमानन्द परमात्मा में परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं उठता। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के एक मन्त्र की दार्शनिक शैली में व्याख्या करते हुए यह प्रश्न उठा दिया कि परमात्मा स्वयं तो गति नहीं करता फिर बिना गति दिये सबको और जगत को कैसे गति देता है? आपने उत्तर दिया है कि वह प्रभु सर्वत्र है। वह जायेगा कहाँ और गति करके आयेगा कहाँ? एकदेशी वस्तु ही जहाँ नहीं वहाँ आती है और जहाँ नहीं वहाँ जाती है। इसी को आना और जाना कहा जाता है। विज्ञान भी इसी को गति कहता है।

जब डॉ० रमेशदत्त जी काशी से महर्षि दर्शन पर पी० एच०डी० कर रहे थे तब आपने पूछा, क्या आर्यसमाज ने प्रकृति पर कोई स्वतन्त्र पुस्तक लिखी है? तब यह प्रश्न पाकर एक बार तो मैं भी चौंक पड़ा। आस्तिकवाद, आस्तिक विचार तथा जीवात्मा जैसे ग्रन्थ तो छपे हैं। प्रकृति की हम चर्चा तो किया करते हैं परन्तु स्वतन्त्र ग्रन्थ कोई देखने में नहीं आया। बहुत विचार कर मैंने उन्हें लिखा कि Philosophy of Dayananda अपने बड़े ग्रन्थ में तथा कुछ अन्य पुस्तकों में पूज्य उपाध्याय जी ने प्रकृति पर बड़े विस्तार से लिखा है। इन्हें एक पुस्तक के रूप में भी छापा जा सकता है। मोक्ष, कर्म फल, स्तुति प्रार्थना उपासना, जीव ब्रह्म का सम्बन्ध, मुक्ति से लौटना, छह दर्शनों का अवरोध, भक्त तथा भगवान् के बीच में, ईश्वरीय ज्ञान की नित्यता, पुनर्जन्म सब सिद्धान्तों पर उपाध्याय जी की लेखनी का लोहा सबने माना है। आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने भी शंकर मतवादी होते हुए आपको 'आस्तिकवाद' लिखने पर नमन किया। बड़े-बड़े मौलिवियों ने 'इस्लाम के दीपक' की तो खुलकर प्रशंसा नहीं की परन्तु पीठ पीछे आपकी ऊहा, चिन्तन, व्यापक अध्ययन तथा पाण्डित्य पर वाह! वाह!! करते हुए कहा, "काश कि यह आलिम फ़ाज़िल मुसलमान होता तो इस्लाम सारे संसार में फैल जाता।"

आर्यो! प्रकाशक को इस ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन पर सहयोग करके इसका प्रचार करो। जीवन में कुछ कर दिखाओ। यश पाओ। अनुवादक को धन्यवाद देने के लिये शब्द कहाँ से लावें? पुराने लेखकों में से प्रत्येक की प्रत्येक पुस्तक उठाकर छाप देना तो कोई बुद्धिमत्ता नहीं परन्तु पं० लेखरामजी, स्वामी दर्शनानन्द जी, श्री लक्ष्मण जी, स्वामी वेदानन्दजी, पूज्य उपाध्याय जी के अधिकांश साहित्य का प्रकाशन होता रहे तो लाभ है।

ओ३म्

संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य-चर्चा एवं समाधान

'ईश्वर का दिखाई न देना और उसकी अनुभूति न होना सबसे बड़ा आश्चर्य है'

–*मनमोहन कुमार आर्य,* देहरादून

महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न पूछा था कि संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? उन्होंने अपने उत्तर में कहा था कि मनुष्य प्रतिदिन लोगों को मरते हुए देखता है परन्तु वह यह नहीं सोचता कि एक दिन उसे भी मरना है, यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। यक्ष ने इस उत्तर को ठीक मानकर उन्हें वरदान मांगने के लिए कहा और जो उन्होंने मांगा उसे पूरा किया। निश्चित रूप से यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है। **इसके अतिरिक्त हम जानते हैं कि यह संसार स्वयं नहीं बना, अपने आप बन भी नहीं सकता। जिसने इसे बनाया है उसे ईश्वर कहते है। मनुष्य को भी ईश्वर ने बनाया है। जब ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध है और संसार व मनुष्य आदि सभी प्राणियों को उसने बनाया है, अन्य कोई सत्ता नहीं है जो यह कार्य कर सकती हो, तो फिर ईश्वर का दर्शन व उसकी अनुभूति न होना, हमें लगता है कि संसार का एक अन्य सबसे बड़ा आश्चर्य है।**

आईये ईश्वर दिखाई क्यों नहीं देता और उसकी अनुभूति क्यों नहीं होती, इन प्रश्नों पर विचार करते हैं। ईश्वर किसी को भी दिखाई नहीं देता? इसका क्या कारण हो सकता है? **हम आंखों से साकार वस्तुएं देखते हैं। साकार वस्तुएं परिमित होती हैं। ईश्वर द्वारा रचित यह ब्रह्माण्ड अपरिमित है, अनन्त है, इसका न कोई ओर है न छोर। अतः अपरिमित होने के कारण ईश्वर साकार न होकर निराकार है।** अब दूसरे प्रश्न, ईश्वर की अनुभूति न होने के कारणों पर विचार करते हैं। प्रत्येक विद्वान एवं अविद्वान मनुष्य के पास पाँच ज्ञानेन्द्रिय–आँख, जिह्वा, नाक, त्वचा और कान हैं। इन्हीं इन्द्रियों से जीवात्मा अर्थात् मनुष्य को ज्ञान होता है और उस ज्ञान से अनुभूति होती है। यदि ईश्वर की अनुभूति इन ज्ञान इन्द्रियों से नहीं हो रही है तो स्वाभाविक रूप से वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श व शब्द, इन्द्रियों के विषयों से, पृथक है। **अब मनुष्य के**

पास मन, बुद्धि व आत्मा बचते हैं। देखना है कि क्या यह ईश्वर का अनुभव करते व करा सकते है। मन का कार्य मनन करना है। इसीलिए हम मनुष्य कहलाते हैं। **जब हम इस संसार को देखते हैं तो स्वाभाविक रूप से मन, अपने आप से, प्रश्न करता है, इसका रचियता कौन है? यह संसार उसने क्यों व किसके लिए बनाया है?** यह सनातन व शाश्वत प्रश्न हैं जो सृष्टि के प्रारम्भ से हमारे आदि पूर्वजों, ऋषियों–मुनियों, विचारकों व चिन्तकों को आन्दोलित करते रहे हैं। **इससे पूर्व की वह स्वयं इनका उत्तर ढूंढते उनके हाथ में वेद का ज्ञान आ गया। संसार की सभी जिज्ञासाओं का समाधान करने में वेद सक्षम हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने अर्न्तचक्षुओं से यह जाना था कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और इसमें संसार की सभी सत्य विद्यायें विद्यमान हैं।** ईश्वरीय ज्ञान होने की एक कसौटी होती है कि वह सृष्टि बनने के साथ आरम्भ के मनुष्यों को प्राप्त हो। वेद इस कसौटी पर खरे उतरते हैं जबकि अन्य कोई पुस्तक या ज्ञान यह दावा न करते हैं न कर सकते हैं। दूसरी कसौटी यह भी है कि ईश्वरीय ज्ञान में कोई भी बात असत्य, अप्रमाणिक, तर्कहीन व सृष्टिक्रम व सृष्टि नियमों के विपरीत हो। तीसरी कसौटी है कि वेद की भाषा किसी देश व स्थान विशेष की भाषा न होकर ऐसी हो जिसके लिए सभी मनुष्यों को समान रूप से परिश्रम करना पड़े। अन्य कसौटी यह भी होनी चाहिये कि ईश्वर प्रदत्त भाषा के शब्द व उनके अर्थ में सरलता, गम्भीरता व वैज्ञानिकता होनी चाहिये जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला एवं परस्पर व्यवहार आदि सरलता से किए जा सकें। वेद में यह सब कसौटियां विद्यमान हैं। वेदों की अन्तःसाक्षी भी वेद को ईश्वरीय भाषा एवं ज्ञान सिद्ध करती है। अब वेद सृष्टि के रचयिता का परिचय किस प्रकार से देते हैं, इससे सम्बन्धित एक वेद मन्त्र व उसका हिन्दी अर्थ प्रस्तुत करते हैं:

अहमन्द्रिो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेवतस्थे कदावन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥

(ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 48, मन्त्र 5)

उपर्युक्त मन्त्र का महर्षि दयानन्द कृत अर्थ व भावः 'मैं (ईश्वर) परम ऐश्वर्यवान् (हूँ) एवं सूर्य के सदृश सब जगत् का प्रकाशक हूँ। मैं न कभी पराजय को और न ही मृत्यु को प्राप्त होता हूँ। **मैं ही जगत** रूप धन **अर्थात् सृष्टि का निर्माता हूँ। सब जगत् की उत्पत्ति करने**

वाले मुझ ही को जानों। हे जीवों! ऐश्वर्य प्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञानादि धन को मुझ से मांगो और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग मत होओ।' हम पाठको से निवेदन करते हैं कि वह विचार करें कि संसार की उत्पत्ति के आरम्भ में ही सबसे कठिन व जटिल प्रश्न का उत्तर वेद ने हमें दे दिया जिसे आज तक विज्ञान हल नहीं कर सकता है। अन्तिम उत्तर भी यही होना है, यह निश्चित है। वेद को पढ़ने से उसकी अन्तःसाक्षी से यह ज्ञान स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर ही वेद मन्त्रों के कर्ता, रचियता हैं और उन्होंने ही जीवात्माओं के कल्याण के लिए यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में दिया था। वैदिक भाषा शास्त्री यह भी बताते हैं कि वेद भाषा के अपभ्रंशों एवं विकारों से ही संसार की अन्य समस्त भाषायें अस्तित्व में आईं हैं। विदेशी विद्वानों का यह दुराग्रह ही प्रतीत होता है कि वह भारत एवं वेदों के अनुयायी आर्यो को यह श्रेय देना नहीं चाहते और इनका उत्तर तरह–तरह की थ्योरियों व उपायों से करते हैं जो कि असत्य होने के कारण वर्तमान समय तक न तो सर्वमान्य हो सके हैं और न कभी होंगे।

अब यह उत्तर मिलना शेष है कि ईश्वर ने यह संसार क्यों व किसके लिए बनाया है? यह प्रसन्नता की बात है कि इस प्रश्न का भी बहुत ही सन्तोषजनक एवं स्वीकार्य उत्तर वेद एवं वैदिक साहित्य में विद्यमान है। संसार क्यों बनाया का उत्तर है कि **ईश्वर संसार बना सकता है, बनाना जातना है, पहले भी असंख्य बार बना चुका है, उसमें संसार बनाने का पूरा सामर्थ्य है, तो क्यों न बनाता?** यदि न बनाता तो यह आरोप लगता कि ईश्वर निकम्मा है, वह संसार नहीं बना सकता। अतः संसार बनाना ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने का प्रमाण है और संसार बना कर व उसके निमयों के अन्तर्गत चला कर उसने स्वयं की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध कर दी है। **यह संसार ईश्वर ने अपनी सनातन प्रजा–'जीवों' के 'भोग व अपवर्ग' के लिए बनाया है।** भोग कहते हैं अपने पूर्व संचित कर्मो के फलों को भोगना जो कि सुख व दुःख रूप होते हैं। अच्छे कर्मों यथा–सही विधि से ईश्वरोपासना, वेद के शिक्षाओं के अनुसार जीवनयापन करना, यज्ञ, दान, सेवा, देश भक्ति के कार्य आदि हैं जिनका फल सुख के रूप में मिलता है। तथा वेदों के विरुद्ध कार्य करना, असत्य भाषण, ईश्वरोपासना व यज्ञ आदि न करना, देश समाज व अन्य प्राणियों को हानि व दुःख पहुँचाना आदि कार्य बुरे कर्म है जिनका परिणाम

व फल दुःख के रूप में मिलता है। अगले जन्म में हमारी जाति यथा, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट–पतंग आदि, आयु तथा भोग इस जन्म के कर्मो के आधार पर निर्धारित होंगे। यह बात वह सिद्धान्त योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पंतजलि का है जिन्होंने अपनी साधना, ज्ञान व योग बल से प्रकृति के रहस्यों को जाना था और वेद–सम्मत है। अतः भावी जन्मों में कल्याण के लिए तो हमें वेद की आज्ञाओं का पालन, **जो और कुछ नहीं अपितु केवल सद्कर्म ही हैं,** करना होगा **अपवर्ग दुःखों की पूर्ण निवृत्ति को कहते हैं। इस अवस्था का नाम 'मोक्ष' भी है। जो हमारे सत्कर्मो से हमें मिलता है और इस अवस्था को प्राप्त करने वाले मनुष्यों को बहुत लम्बी अवधि तक जन्म–मरण से अवकाश मिल जाता है और उस अवधि में जीवात्मा ईश्वर के सान्निध्य में पूर्ण आनन्द को भोगता है।** यह सब विचार व मान्यतायें बुद्धि की कसौटी पर कसी हुई हैं और आत्मा की भी स्वीकृति इसमें है।

अब ईर्श्वर के दिखाई न देने का कारण हमारी समझ में आ गया है। एक तो वह अपरिमित होने के कारण आकार से रहित अर्थात् निराकार है। दूसरा कारण है हमारा मन जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छायें, राग, द्वेष आदि दुर्गण एवं अज्ञानता भरी पड़ी है। **जिस प्रकार दूषित दर्पण में अपना चेहरा दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार मन में पड़े इन अज्ञानता आदि के आवरणों के कारण भी ईश्वर दिखाई नहीं देता और न उसकी अनुभूति ही हो पाती है।** यदि ईश्वर को देखना है तो दुर्गुणों को दूर कर भद्र की प्राप्ति करनी होगी। अज्ञानता को दूर कर सभी दुर्गुणों के आवरणों को दूर करना होगा। **मन में स्वच्छता व शुद्धता आ जाने पर ईश्वर दिखाई भी देगा और उसकी अनुभूति भी होगी और जीवात्मा पूर्ण आनन्द की स्थिति को प्राप्त होगा।**

ओ३म्

'वैदिक भाषा सरल एवं सर्वोकृष्ट है'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

वेद की भाषा सरल एवं सर्वोकृष्ट है। ऐसा हम इसलिए कह रहे हैं क्योंकि महर्षि दयानन्द सरस्वती वेदों को ईश्वर से प्रादूर्भूत मानते हैं। यदि वेद ईश्वर से प्रादूर्भत हुए हैं तो स्वाभाविक रूप से वेदों की भाषा ईश्वरीय

सिद्ध होती है। अब ईश्वर पर संक्षिप्त विचार करते हैं तो वह इस ब्रह्माण्ड एवं जड़-चेतन जगत रचियता व पालक है। यह ब्रह्माण्ड अनन्त है, अतः स्वाभाविक रूप से वह अनन्त भी सिद्ध होता है। अनन्त पदार्थ का सूक्ष्मतम्, निराकार व सर्वव्यापक होना आवश्यक है। ऐसे जिस ईश्वर ने इस संसार को बना कर धारण किया है और जिसने मनुष्यों सहित समस्त प्राणी जगत को बनाया है, उस सर्वज्ञ सत्ता ईश्वर की भाषा भी उसकी अन्य रचनाओं की तरह पूर्ण, निर्दोष, सरल व सर्वोत्कृष्ट होनी चाहिये।

सृष्टि के आरम्भ में वेदों का ज्ञान प्राप्त होने के बाद आदि ऋषियों ने वैदिक ज्ञान का प्रचार प्रसार किया। स्वाभाविक रूप से उन्होंने वैदिक संस्कृत का ही प्रयोग किया होगा क्योंकि दूसरी कोई भाषा उस समय थी ही नहीं। बाद में उन ऋषियों ने अन्यों को समझाने व पढ़ाने के लिए संस्कृत भाषा के शब्द, उनके अर्थ व व्याकरण आदि के ग्रन्थ बनायें होंगे। वेद पहले ही होने के कारण अधिकाधिक शब्द वेदों से ही लिए गये होंगे। सृष्टि को बने हुए 1,96,08,53,112 वर्ष हो चुके हैं अतः इस लम्बी अवधि में समय-समय पर व्याकरण के अनेकानेक ग्रन्थों का प्रणयन हमारे ऋषि-मुनियों ने किया होगा। यह भी स्वाभाविक है कि अधिक पुराने ग्रन्थ सुरक्षित नहीं रह सकते अतः आज हमारे प्राचीन सभी ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं हैं परन्तु पाणिनी की अष्टाध्यायी, अष्टाध्यायी पर महर्षि पतंजलि का महाभाष्य ग्रन्थ, महर्षि यास्क का निरूक्त एवं निघण्टु आदि अनेकानेक ग्रन्थ उपलब्ध है। आर्य जगत के **विख्यात संस्कृत विद्वान पं. युधिष्ठिर मीमांसक** ने **'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास'** ग्रन्थ का चार भागों में प्रणयन किया है। इस ग्रन्थ में उन्होंने कठोर परिश्रम व तप से उपलब्ध हुए अनेकानेक व्याकरणाचार्यों का उल्लेख किया है। इन ग्रन्थों को पढ़कर व अन्य भाषाओं के व्याकरण व अक्षर व लिपि को देखकर संस्कृत व वैदिक भाषा व लिपि की उत्कृष्टता व महत्व स्वतः सिद्ध हो जाता। इस लेख में हमारा उद्देश्य संस्कृत की समस्त विशेषताओं की चर्चा न कर केवल वैदिक भाषा संस्कृत सरल व सर्वोत्कृष्ट है, यही प्रस्तुत करना है।

सरल शब्द पर विचार करें तो यह तथ्य सम्मुख आता है कि सरल भाषा वह होगी जिसे दूसरे मनुष्य को पढ़ाया व समझाया जा सके और वह आसानी से उसे समझ व बोल सके। यदि संस्कृत को देखें तो यह तथ्य सामने आता है कि संस्कृत आदि काल से महाभारत काल तक विश्व भर

में प्रयोग में लाई जाती रही। आज विश्व की सभी भाषाओं में संस्कृत अथवा संस्कृत से विकृत हुए व अपभ्रंस शब्दों की अच्छी खासी शब्दराशि विद्यमान है। इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सभी भाषाओं की उत्पत्ति संस्कृति से हुई है या संस्कृत से उत्पन्न इतर भाषाओं के पुनः पुनः अपभ्रंसों व परस्पर के सम्मिश्रण से हुई है। ऐसा भी हुआ होगा एवं होता है कि एक भाषा जानने व बोलने वाला व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर गया। वहाँ के लोग उसकी व अन्य कोई भी भाषा को जानते नहीं थे। इसने उन्हें अपनी भाषा को समझाया। उन्होंने भाषा सीख ली और उसका प्रयोग करने लगे। ऐसी स्थिति में जब नये लोगों द्वारा किसी भाषा का प्रयोग किया जाता है तो उनका उच्चारण व चिन्तन उस भाषा के पूर्ण विद्वान की तुलना में भिन्न होता है। इसी प्रकार वह व्यक्ति जिन-जिन को भाषा सिखायेगा और वह सीखे हुए व्यक्ति जिन लोगों को भाषा सिखायेंगे उन सबका उच्चारण भी भिन्न होगा और भौगोलिक व अन्य कारणों से वह कुछ शब्द स्थानीय भी प्रयोग में लायेंगे। पूर्व जन्म के संस्कार भी मनुष्यों में होते हैं। इनका जहाँ मनुष्य के स्वभाव पर प्रभाव होता हैं वहीं हमें लगता है कि इसका कुछ प्रभाव उनकी भाषा, शब्दों के उच्चारण व शारीरिक हाव-भाव आदि पर भी होता है। इस प्रकार भाषा में शब्दोच्चारण में भिन्नता व कुछ-कुछ नये शब्द आते रहते हैं और दीर्घ काल व्यतीत होने पर नई बोली एवं भाषा बन जाती है। अतः सृष्टिकाल 1,96,08,53,112 वर्षो में न जाने कितनी भाषायें अस्तित्व में आयीं व कितनी भाषाओं का अस्तित्व ही समाप्त हो गया अथवा उन्होंनो नया रूप धारण कर लिया।

भाषा की सरलता में यह भी आवश्यक है कि उसके शब्द सरल हों। उन शब्दों को आसानी से बोला जा सके, इनके अर्थ भी सरल हों, उनके उच्चारण से ही उसके अर्थ का बोध स्वतः हो जाये। उसके अतिरिक्त हृदय के सभी प्रकार के भावों को उस भाषा में प्रस्तुत या व्यक्त किया जा सके, ऐसी क्षमता उसमें हो। संस्कृत इस कसौटी को पूरा करती है। इसके शब्द सरल हैं। यहाँ हर संबंध के लिए एक अलग शब्द है। उदाहरणार्थ माता, पिता, दादा, दादी या पितामह व पितामही, चाचा, ताऊ, चाची, तायी, नाना, नानी, मामा, मामी, मौसा, मौसी, बुआ, फूफा आदि। इसी प्रकार जल, अग्नि, वायु, ईश्वर आदि शब्दों पर विचार करें तो इनके अनेकों

पर्यायवाची शब्द हैं। यह विशेषता अन्य भाषाओं में शायद ही मिले। इसके अतिरिक्त संस्कृत में जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा भी जाता तथा यह अभिव्यक्ति ठीक मन में उठे विचारों के अनुरूप होती है। ऐसा नहीं कि मन में आता हो कि मुझे भूख लगी है और मैं बोलूं कि 'मैं हूं भूखा अर्थात् I am hungry. यहाँ शब्दों के अर्थो को जानने के लिए शब्दों को निर्वचनों का एक अलग ग्रन्थ 'निरुक्त' विद्यमान है जो पूर्ण वैज्ञानिक रीति से शब्द के पूरे अर्थ को बताता है। अन्य किसी भाषा में ऐसा कोई शास्त्र या ग्रन्थ नहीं है।

हम यहाँ उल्लेख करना चाहते हैं कि माता पिता का यह प्रयास होता है कि उनकी सन्तान विद्वत–समुदाय द्वारा बोली जाने वाली शुद्ध भाषा को बोले जिससे समाज में उसे प्रतिष्ठा मिले। वह अपने बच्चों के उच्चारण पर बहुत ध्यान देते हैं और अशुद्ध उच्चारण करने पर उसे उसका सुधार कर शुद्ध उच्चारण करने की प्रेरणा करते हैं। उनका यह भी प्रयास होता है कि बच्चा जिन शब्दों का प्रयोग करता है वह असभ्यों व अपठितों वाले शब्दों का प्रयोग न कर सभ्यों व विद्वानों द्वारा प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग करें। जब माता–पिता ऐसा चाहते हैं तो क्या संसार के सब प्राणियों का माता व पिता ईश्वर ऐसा नहीं चाहेगा कि सभी मनुष्य शुद्ध व उत्कृष्ट भाषा का प्रयोग करें? अतः ईश्वर से प्राप्त भाषा सरल व सर्वोत्कृष्ट होगी यह सिद्ध होता है। वेदों में जिस भाषा व शब्द समूह का प्रयोग है उसे किसी अर्वाचीन व प्राचीन वैदिक व इतर विद्वान ने अपूर्ण, अशुद्ध, जटिल, असभ्य आदि नहीं पाया है। वैदिक भाषा पर भी ऐसा किसी देशी व विदेशी विद्वान का कथन नहीं मिलता जो संस्कृत को अशुद्ध, अपूर्ण व असभ्य भाषा कहता हो। भाषा के तुलनात्मक किसी अध्ययन में संस्कृत अन्य किसी भाषा की तुलना में अपूर्ण व अशुद्ध व अधूरी पायी गयी है, ऐसा कोई उदाहरण भी हमारी दृष्टि में नहीं आया है। इससे यह सिद्ध है कि संस्कृत में एक अच्छी व उत्कृष्ट भाषा के सभी गुण विद्यमान हैं। अब भाषा तो उत्कृष्ट है क्या यह सरल हैं एवं कठिन है? इसका निर्धारण किया जाना है।

यह स्वाभाविक है कि जो वस्तु जितनी उत्कृष्ट होती है उसे बनाने में अनेक नियम व सिद्धान्तों का प्रयोग होता है। साधारण व आम व्यक्ति को उसको समझना कठिन होता है परन्तु विद्वानों को वही प्रिय होती है। चाहे हम संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू

को ही लें, आम व्यक्ति द्वारा बोली जाने वाली ये भाषायें उन भाषा के विद्वानों व साहित्यकारों की अपेक्षा कुछ भिन्न होती है। जब अन्य भाषाओं में भी यह बात है तो संस्कृत व वेद भाषा को ही सरल न माना जाये ऐसा पक्षपात उचित नहीं है। जब हम यह धारणा बना लेंगे कि हमें संस्कृत सीखनी है और उसके लिए उचित परिश्रम करेगें तो यह हमारी समझ में अवश्य आयेगी और कभी न कभी हम इसमें पारंगत हो जायेंगे। हमें बस संस्कृत शब्दों को जानना है व उसके व्याकरण को जानना व समझना है। इन्हें जानकर व समझकर अभ्यास द्वारा हम इसमें पारंगत हो जायेंगे ऐसा हमें लगता है। हमें लगता है कि भारत वासियों के लिए हिब्रू, चीनी, जापानी, फ्रैंच, जर्मनी आदि भाषाओं की तुलना में संस्कृत जानना, समझना व बोलना सरल हो सकता है। **संस्कृत को जानने से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि हम वैदिक ज्ञान व शास्त्रों को जान पायेंगे और उन्हें जानकर हम धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को जान व समझ सकेंगे। इनसे हमारा यह जीवन भी सफल होगा व मृत्योत्तर जीवन भी सफल होगा। अन्य भाषाओं व उनके साहित्य में आध्यात्मिक ज्ञान है ही नहीं तो उनसे हम मंजिल पर नहीं पहुँच सकेंगे।** हमारी दृष्टि में भारत ही नहीं विश्व में उत्पन्न सभी मनुष्यों को अपनी–अपनी भाषाओं के साथ–साथ वैदिक संस्कृत अवश्य सीखनी चाहिये और वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर व स्वयं स्वतन्त्रतापूर्वक अपने जीवन का लक्ष्य व कर्तव्य निर्धारित कर उसका पालन करें। हम आर्य जगत के शीर्ष विद्वानों से यह भी प्रार्थना करते हैं कि वह इस विषय पर अवश्य अधिकाधिक लिखे जिससे सारा विश्व संस्कृत का महत्व जान जाये और उसे संस्कृत सीखने सहित अपना कर्तव्य निर्धारण करने में सहायता मिले।

हम यहाँ उल्लेख करना चाहते हैं कि माता पिता का यह प्रयास होता है कि उनकी सन्तान विद्वतसमुदाय द्वारा बोली जाने वाली शुद्ध भाषा को बोले जिससे समाज में उसे प्रतिष्ठा मिले। वह अपने बच्चों के उच्चारण पर बहुत ध्यान देते हैं और अशुद्ध उच्चारण करने पर उसे उसका सुधार का शुद्ध उच्चारण करने की प्रेरणा करते हैं। उनका यह भी प्रयास होता है कि बच्चा जिन शब्दों का प्रयोग करता है वह असभ्यों व अपिठतों वाले शब्दों का प्रयोग न कर

सभ्यों व विद्वानों द्वारा प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग करें। जब माता-पिता ऐसा चाहते हैं तो क्या संसार के सब प्राणियों का माता व पिता ईश्वर ऐसा नहीं चाहेगा कि सभी मनुष्य शुद्ध व उत्कृष्ट भाषा का प्रयोग करें? अतः ईश्वर से प्राप्त भाषा सरल व सर्वोत्कृष्ट होगी यह सिद्ध होता है।

कुछ विशेष प्रकाशन

तडपवालेः तड़पती है जिनकी कहानी

प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' रु. 200.00

आर्य समाज की विभूतियों, संन्यासी, महात्माओं, विद्वानों और ऋषि-भक्तों के जीवन के ऐतिहासिक प्रेरक-प्रसंग। इसमें ज्ञात और अज्ञात बड़े-छोटे अनेक प्राणवीरों की शूरता, वीरता सेवा, संयम आत्म-समर्पण व सद्गुणों पर प्रकाश डालने वाले प्रेरक प्रसंग पढ़िए। नवयुवकों में ऊर्जा का संचार भरने के लिऐ यह पुस्तक एक अनूठा ऊर्जा स्रोत है।

ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी

डॉ. भवानीलाल भारतीय रु. 95.00

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने ऐसे 50 व्यक्तियों के जीवनवृत तथा स्वामी दयानन्द से इनके पारस्परिक संबंधों की विवेचना की है जो भक्त, प्रशंसक तथा सत्संगी इन तीन वर्णो में परिगणित किये जा सकते हैं।

महर्षि दयानन्दः सरस्वती (2 भागों में)

सम्पूर्ण जीवन चरित्र पं. लक्ष्मण जी आर्योपदेशक

अनुवादक, सम्पादक प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु रु. 900.00

उर्दू में लिखित इस बृहद जीवन चरित्र का प्रथम बार हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में आपको ऐसी सामग्री मिलेगी जो किसी अन्य जीवनी में नहीं मिलेगी। सम्पादक ने कई परिशिष्ट व पाद-टिप्पणियाँ देकर इस समय सर्वथा अप्राप्य पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं, रिपोर्टों तथा अन्य दस्तावेजों के प्रमाण देकर ग्रन्थ की गरिमा को चार चाँद लगा दिये हैं।

डॉ. मनोहरलाल आर्य कृत सरल साहित्य

धर्म और मानवता रु. 50.00

धर्म का अर्थ है 'मानवता' और 'मानवता' ही 'जागरण' है। जो जाग गया, सो पा गया और जो सोया रहा, उसने क्या पाना? प्रस्तुत है भारतीय परम्परा के अन्तर्गत धर्म और मानवता का दिव्य स्वरूप, वैदिक तथा आर्य शास्त्रों की मान्यताएँ और कुछ कवियों की रचनाएँ।

कर्तव्यों की पूर्णताः पञ्चमहायज्ञ रु. 50.00

प्रस्तुत पुस्तक में स्वर्ग के साधन पाँच महायज्ञों एवं वेदोक्त नित्य कर्मों के अनुष्ठान की अधिदैविक तथा आध्यात्मिक विधि पर आधारित मान्यताओं की पुष्टि की गयी है। महाभारत के कुछ शिक्षाप्रद अंशों का संकलन तथा भजन भी संकलित है।

यज्ञमय जीवन और वृद्धावस्था रु. 50.00

संयमी जीवन बिताते हुए वृद्धावस्था में पहुँचना ही प्रभु की ओर से मिले वरदान से कम नहीं। क्यों और कैसे? इन सवालों का उत्तर इसी पुस्तक में देने का प्रयास किया गया है।

ब्रह्मनाद्ः ओ३म् रु. 50.00

ओ३म् अक्षर ही ब्रह्म है, यह ओ३म् ही मंत्र है। इसका जप, ओंकार को स्वात्म सिद्ध कर लेने जैसा है। वैदिक ग्रन्थों में ओ३म् की व्याख्या तथा विभिन्न मत-मतान्तरों में ओ३म् शब्द का स्वरूप तथा कुछ शिक्षाप्रद अंशों का संकलन प्रस्तुत है।

योग एक सरल परिचय रु. 50.00

भारतीय परम्परा के पाँच योगियों-योगर्षि पतञ्जलि, मुनि वेदव्यास, योगिराज श्री कृष्ण, जगद् गुरु शंकराचार्य तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के योगानुभवों का सार तथा वैदिक शास्त्रों के विचार प्रस्तुत।

गायत्री गरिमा रु. 50.00

प्रस्तुत है गायत्री मंत्र के संदर्भ में प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के आदेश, आर्य विद्वानों और महात्माओं द्वारा रचे ग्रन्थों में दिए गए विचारों और महापुरुषों और विद्वानों के विचारों का संग्रह तथा कवियों की रचनाएँ और प्रभु भक्ति के भजन

प्राप्ति स्थान :

विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद

4408, नई सड़क दिल्ली-6

दूरभाषः 01123977216, 65630255

अप्रैल २०१४ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG)-11/8030/2012-14, U(DGO) 01/2013-14 15.07.2013

महात्मा गोपाल स्वामी कृत विचारशील साहित्य

आश्रम व्यवस्था एक प्रासंगिक विवेचन रु. 51.00

पुस्तक में प्रत्येक आश्रम की महत्ता, उपादेयता तथा उसके व्यावहारिक पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत पुस्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के कालजयी ग्रन्थों पर ही आधारित है।

जीवन में सफलता के तीन सूत्र: कामना-प्रार्थना-पुरुषार्थ रु. 21.00

जीवन के जिस क्षेत्र अथवा कार्य में आप सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, उसके लिए यह तीन सूत्र आवश्यक हैं–कामना, प्रार्थना तथा पुरुषार्थ। आईए उन्हें विस्तार से समझें।

उपनयन संस्कार-यज्ञोपतीत रहस्य रु. 11.00

माता-पिता अपने पुत्र या पुत्री को गुरु के पास ले जाते हैं। इस क्रिया का नाम 'उपनयन' है, अर्थात् 'समीप लाना।' आईए जानें यज्ञोपतीत की आवश्यकता, महत्ता, अनिवार्यता तथा उपयोगिता को।

वन्दना के स्वर रु. 40.00

इसमें प्रात: जागरण से लेकर शयन तक वन्दना के वेद मन्त्रों का संग्रह सरल अर्थों के साथ किया गया है। प्रात: से शयनकाल तक कैसे परमात्मा से समीपता बनाएँ रखें यही इसका उद्देश्य है।

वेद स्वाध्याय प्रदीपिका रु. 100.00

प्रस्तुत है चुने हुए वेद मन्त्रों पर सरल व्याख्याएँ। सभी की वेदों के स्वाध्याय में रुचि बढ़े, इसके लिए इन लेखों को पढ़ें, पढ़ायें, सुनें और सुनाएं।

वेद मनीषा के अनमोल रत्न रु. 65.00

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से ही लिए गये 165 शब्दों को लेखक ने परिभाषित किया है। ताकि जो वैदिक सिद्धान्तों, वैदिक मन्तव्यों तथा वैदिक आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात करना चाहते हों, उन्हें सुविधा हो।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का बरेली शास्त्रार्थ रु. 25.00

स्वामीजी के निम्न तीन विषयों पर बरेली में शास्त्रार्थ हुए। (1) क्या आवागमन (पुनर्जन्म) होता है (2) क्या ईश्वर देह धारण करता है? (3) क्या ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है? आईए जानें इन तीनों शास्त्रार्थें को।

बरेली में स्वामी दयानन्द का प्रवास रु. 25.00

स्वामी दयानन्द के बरेली प्रवास की मुख्य घटनाएँ एवं स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन के प्रेरक प्रसंग भी आपको इस पुस्तक में पढ़नें को मिलेंगे।

प्रकाशक-अजयकुमार, मुद्रक-अजयकुमार, स्वामी-अजयकुमार, गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6, अजयकुमार द्वारा सम्पादित, प्रिंटर्स-अजय प्रिंटर्स, 1586/C-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 में प्रिंट करा, वेदप्रकाश कार्यालय, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6 से प्रसारित किया। न्यायक्षेत्र-दिल्ली।